हिन्दूधर्म, ईसाइयत और इस्लाम

रामस्वरूप

भारत-भारती
२/१८, अन्सारी रोड,
नई दिल्ली-११०००२

धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता

(११ जुलाई १९७८ के दिन नई दिल्ली में एक गोष्ठी की गई थी। गोष्ठी का विषय था धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता। गोष्ठी का आयोजन, योरप तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से आए हुए उन ८५ ईसाइयों के अनुरोध पर किया गया था जो यूनीटेरियन सम्प्रदाय के अनुयायी थे। लेखक ने इस गोष्ठी में हिन्दू दृष्टि प्रस्तुत की थी। यह लेख उस दिन पढ़े गए निबन्ध का परिमार्जित रूप है।)

धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता आज अनेक देशों में किसी न किसी रूप में, संकटापन्न है। कम्युनिस्ट देशों में यह संकट अत्यन्त जघन्य हो उठा है। इन देशों में नागरिक तथा राजनीतिक स्वाधीनता का ही नहीं अपितु धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता का भी जमकर अपहरण किया जा रहा है। यह एक घोर खेद का विषय है। हम आशा करते हैं कि इन देशों के शासक अपनी इस भूल को समझेंगे तथा सुधारेंगे।

धर्म को जनगण का नशा नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत, धर्म मानव-जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है, मानव के अन्तरतम की एक परम उदात्त अभिव्यक्ति है। धर्म जिस पूर्ति का परिचायक है उसका कोई पर्याय नहीं। धर्म-भावना को दबाना, जनजीवन को पंगु बनाने का दूसरा नाम है।

किन्तु धर्म के प्रसंग में असहिष्णुता का आचरण केवल कम्युनिज्म ने ही नहीं किया। यह एक खेदजनक किन्तु सच्ची बात है कि कई-एक धर्मों ने भी धर्म-सम्बन्धी असहिष्णुता का आचरण किया है। धर्म को लेकर जिहाद किए गए हैं। आजकल के कम्युनिस्ट राष्ट्र जिस प्रकार के "मुक्ति-संग्राम" चलाते हैं ठीक वैसे ही "मुक्ति-संग्राम" कई धर्मों के इतिहास में भी मिलते हैं। धर्म से विचलित माने गए लोगों का दारुण दमन भी हुआ है। दमन की प्रक्रिया में मतान्ध भीड़ को भड़काकर अथवा राजसत्ता का प्रयोग करके हिंसा की गई है, रक्त बहाया गया है। बहुत बार ऐसे जनसंहार हुए हैं कि समूचे जनसमवाय जड़मूल से नष्ट हो गए। कई-एक देशों में स्थानीय संस्कृतियों तथा धर्मों के विरुद्ध ऐसी योजनाबद्ध बर्बरता का व्यवहार किया गया है कि निरन्तर उत्पीडन के परिणाम-स्वरूप

समूचे राष्ट्र समूल नष्ट हो गए, और उनकी स्मृति तक शेष नहीं रही। असहिष्णुता की यह प्रवृत्ति कुछ धर्मों में इतनी प्रकृत और प्रबल रही है कि अनेक मनीषी कम्यूनिज्म को भी उन धर्मों का पर्याय मानने लगे हैं।

अतएव यह हर्ष का विषय है कि योरप तथा अमेरिका के जनगण ने अधुना धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता की लड़ाई जीत ली है और वहाँ अब सब लोगों को अपनी-अपनी आस्था के अनुसार उपासना करने का अधिकार मिल गया है। यह अधिकार, यह स्वाधीनता, और दूसरों के प्रति सहिष्णुता की यह प्रवृत्ति एक महान उपलब्धि है जिसका अर्जन अनेक उत्सर्गों के उपरान्त हुआ है।

धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता के लिए किए गए संघर्ष में जो सफलता मिली है उसकी कहानी के कई-एक रोचक पक्ष हैं। एक पक्ष तो यह है कि धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता मिलते ही बहुत-से लोगों ने धर्म से ही पिण्ड छुड़ा लिया। कुछ धर्मों द्वारा किए गए अत्याचारों को देख-सुन कर अनेक विचारवान लोगों के लिए धर्म की साख ही समाप्त हो गई। अन्य अनेक लोगों में धर्म के प्रति वैमनस्य की भावना पनपी जो आज भी कम्युनिज्म इत्यादि कई-एक सैक्युलर विचारधाराओं में विद्यमान है।

धर्म-सम्बन्धी इस नवोदित स्वाधीनता का एक अन्य पक्ष है बुद्धि की विजय। आस्था ने बहुत दिन तक बुद्धि का गला घोंटा था। बदले में बुद्धि ने अपनी विजय की वेला में आस्था को ठुकरा दिया। योरप का बुद्धिवादी आन्दोलन धर्म-विरोधी आन्दोलन बन गया। यदि हम इस समस्या पर सम्यक् विचार करें तो इसका कारण हम समझ जाएंगे। जब-जब जीवन के किसी सत्य का तिरस्कार किया जाता है तब-तब एक प्रतिकूल प्रवृत्ति भी पनपती है। बुद्धि जीवन का एक सत्य है जिसका तिरस्कार आस्था ने किया था। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उस युग में संकीर्ण आस्था द्वारा जकड़े हुए लोगों के लिए बुद्धि एक मुक्तिदूत बनकर आई थी। हाँ, अब एक नए वातावरण का उदय हो जाने पर यह वाञ्छनीय नहीं कि बुद्धि द्वारा आस्था को उसका यथायोग्य स्थान न दिया जाए।

योरप में धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता के संघर्ष को जो सफलता मिली उसका एक तीसरा पक्ष भी था। धर्म द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों ने योरप से विदा लेकर दूसरे महाद्वीपों की ओर जाना आरम्भ कर दिया। कैथलिक, प्रॉटैस्टैन्ट, जैस्विट, काल्विनिस्ट, मैथडिस्ट. बैपटिस्ट, अनाबैपटिस्ट आदि ईसाई सम्प्रदायों ने अब एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका के देशों को अपना निशाना बनाया। इन सम्प्रदायों के बीच देवमीमांसा की बारीकियों को लेकर अनेक मतभेद थे जिन पर ये जमकर बहस करते रहते थे। ग़ैर-ईसाई लोगों के लिए इस वाद-विवाद का कोई महत्त्व नहीं था। किन्तु इस विषय में ये सारे सम्प्रदाय एकमत थे कि नए

महाद्वीपों के सारे निवासी घोर अन्धकार में डूबे हुए हैं ओर ईसाइयत का प्रकाश ही उनका कल्याण कर सकता है। इस प्रकार का प्रचार करने के लिए इन सभी सम्प्रदायों ने, अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार, अनेक प्रकार के उपायों का उपयोग किया—बलप्रयोग, धोखाधड़ी, समझाना-बुझाना, व्यापार, इत्यादि। मतप्रसार का नवीनतम उपाय समाज-सेवा कहलाता है। अपने द्वारा ही अपने लिए निर्णीत इस दायित्व को निबाहने के लिए कई प्रकार के तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। यह भी कहा गया कि श्वेतांग जाति को एक भार का वहन करना पड़ रहा है। इस प्रकार योरप की कर्मशक्ति को एक नया निकास मिल गया।

राष्ट्रों तथा संस्कृतियों का उत्थान तथा पतन किन कारणों से होता है, यह हम भलीभाँति नहीं जानते। हिन्दू दृष्टि के अनुसार, जिस प्रकार व्यक्तियों का उसी प्रकार राष्ट्रों तथा संस्कृतियों का भी अपना-अपना भाग्य होता है, अपनी-अपनी नियति होती है। योरप की प्राणशक्ति उस समय उत्कर्ष-परायण थी। वह प्राणशक्ति नई-नई खोज कर रही थी, नई-नई जीत जुटा रही थी। उस प्राण-शक्ति ने योरप के सेनानियों, व्यापारियों तथा पादरियों को एक-समान उत्साहित कर दिया था। उन सबने मिलकर नए महाद्वीपों के द्वार योरप के लिए खोल दिए। योरप की तलवार, उसके बही-खाते तथा उसकी बाइबल बहुत बरसों तक इस काम में साझीदार रहे और समान रूप से फलते-फूलते चले गए। योरप की तोपें उत्कृष्टतर थीं। विजेता तथा विजित लोग बहुत दिन तक यह मानते रहे कि योरप का धर्म भी उत्कृष्टतर है।

धर्म के इन धुरन्धरों ने भारतवर्ष में जो काम किया वह बहुत ही विषैला था। मैंने उन काल का इतिहास पढ़ा है। ईश्वर की दुहाई देने वाले इन लोगों से यह अपेक्षा थी कि ये लोग देवात्मा द्वारा इस देश में प्रवर्तित व्यवस्थाओं को समझने में अधिक समर्थ हो सकेंगे। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। योरप के पादरी अथवा मिशनरी ने इस देश के धर्म तथा यहाँ की संस्कृति को, योरप से आए हुए शासक अथवा व्यापारी की तुलना में, अधिक जुगुप्सा की दृष्टि से देखा। कैरी, बुकानन और विल्बरफोर्स इत्यादि मिशनरियों को हिन्दू धर्म में कुछ भी कल्याणकारक नहीं दिखाई दिया। हिन्दू धर्म को वे अन्धकार और अधमता का पर्याय ही मानते रहे। उनकी यह आकांक्षा रही कि उनकी सरकार भारतवर्ष के गैर-ईसाइयों का मतान्तरण करने के लिए बलप्रयोग करे।

हमको केवल शिकायत ही नहीं करनी चाहिए। अनेक अवगुणों के होते हुए भी, इस नए सम्पर्क से हमने बहुत कुछ सीखा है। साम्राज्यवाद का एक पक्ष घिनौना अवश्य था। किन्तु साम्राज्य की स्थापना करने वाले लोग मिट्टी के माधो नहीं थे। नए शासकों में बहुत-से लोग बड़े गुणों से सम्पन्न थे। उनमें बौद्धिक

क्षमता थी, धर्मनिष्ठा थी, व्यवस्था बनाने का कौशल था, सार्थक तथा अनथक कर्मशक्ति थी। उन लोगों में विद्यमान तपस् को लक्ष्य करके हम भारतवासी बहुत कुछ सीख सकते हैं।

एक और बात भी उल्लेखनीय है। राष्ट्रों तथा संस्कृतियों के बीच होने वाले प्रारम्भिक सम्पर्क सदा ही सदाशय नहीं होते। अप्रिय सम्पर्कों के गर्भ में भ्रातृभाव पनपने के लिए समय चाहिए। भगवान् अपनी रचनाएँ कई प्रकार से रचते हैं। योरप के लोग विजेता और आचार्य बनकर यहाँ आए थे। आरम्भ में उनके साथ हमारा सम्पर्क विषम था। किन्तु कालक्रम में कई-एक पुराने वैषम्य मिट गए हैं। भौगोलिक दृष्टि से सारा संसार अब एक हो गया है। इस नए संसार में हम सब लोग भाई-भाई बनकर विचर सकते हैं। पाश्चात्य की विजय ने एशिया के द्वार योरप के लिए खोल दिए थे। किन्तु उसी न्याय से योरप के द्वार भी एशिया के लिए खुल गए। योरप अब पहले की तरह आत्मतृप्त नहीं रह गया। योरप के अत्यन्त संकीर्ण तथा मिथ्याभिमानी लोग ही अब सारे संसार के शिक्षक होने का दम भर सकते हैं। अमेरिका तथा योरप के मूर्धन्य मनीषी अब अपने विषय में विनम्र हो चले हैं। वे समझने लगे हैं कि पूर्व की अध्यात्म-सम्पदा, विशेषकर भारत की अध्यात्म सम्पदा, उनको बहुत कुछ सिखा सकती है।

हिन्दुओं में अपने हिस्से के सारे अवगुण विद्यमान हैं। उनमें अपना स्वाभिमान है, और अपने पूर्वग्रह भी। किन्तु हिन्दू धर्म में एक गुण है जिसने अनेक अहिन्दुओं और विचारकों का ध्यान आकर्षित किया है। वह गुण है हिन्दू धर्म की सहिष्णुता, धर्म के प्रसंग में अनेकत्व की भावना। हिन्दू धर्म का यह गुण भी सराहा जाता है कि उसने अन्य लोगों का मतान्तरण करने के लिए कभी कोई जिहाद नहीं किया, न ही कभी किसी मिशन का गठन किया। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्ज् एण्ड एथिक्स् नाम की ग्रन्थमाला को देखिए। इस ग्रन्थ के अधिकांश लेखक ईसाई मीमांसक है और इसकी दृष्टि ईसाइयत से ओतप्रोत हैं। सच तो यह है कि यह ग्रन्थ ईसाइयत द्वारा चलाए गए पक्षमण्डन का ही एक पर्व है। इस ग्रन्थ में हिन्दू देवताओं को खोटा बतलाया गया है, हिन्दू तत्त्वमीमांसा को तिकड़म कहा गया है, और हिन्दू सदाचार को कदाचार की कोटि में गिना गया है। ग्रन्थ में सौहार्द, प्रेम, करुणा, सत्य, ब्रह्मचर्य, और शुचिता इत्यादि धारणाओं का विवेचन करते समय सर्वत्र यह दिखलाया गया है कि ईसाइयत ही सर्वोत्कृष्ट है और हिन्दू धर्म उसके पास भी नहीं फटक सकता। किन्तु "धर्म-सम्बन्धी अत्याचार" का विवेचन करते समय इस ग्रन्थ में भी यह स्वीकार किया गया है कि इस प्रसंग में हिन्दू धर्म दूसरे धर्मों से उत्कृष्टतर है। कारण, अत्याचार के काण्ड हिन्दू धर्म के इतिहास में खोजने पर भी नहीं मिलते। यह बात इस गोष्ठी

के लिए बहुत महत्व की है जिसका आयोजन धर्म-सम्बन्धी स्वाधीनता के प्रसार के जिए किया गया है। विषयवस्तु बहुत विराट है और इसकी सम्यक् समीक्षा के लिए हिन्दू धर्म की मनीषा का सविस्तार विचार करना होगा। स्पष्ट है कि इस समय वह समीक्षा सम्भव नहीं। अतएव इस समय मैं दो-एक विचार-बिन्दु ही आपके सामने रखूँगा।

हिन्दू धर्म में असहिष्णुता का अभाव कोई संयोग नहीं है। हिन्दू धर्म ने जिस दृष्टि से विश्व का विश्लेषण किया है, मानव तथा मानव के बीच भाईचारे की भावना को दृढ़ किया है, और दिव्यतत्त्व को हृदयंगम किया है, उस दृष्टि के साथ इस धर्म की सहिष्णुता का सम्बन्ध अटूट है।

वह दृष्टि क्या है जिसको हिन्दू धर्म की सहिष्णुता का वास्तविक मूलाधार माना जा सकता ? सरल भाषा में कहा जाए तो हिन्दू धर्म का मर्म हैं सब प्रतीकों में एक ही सत्य का साक्षात्कार करना। इस मर्म के महत्त्व को हिन्दू धर्म ने अपने आदिकाल से लेकर आज तक बार-बार प्रज्ञप्त किया है। वेद आर्यजाति की सबसे प्राचीन संहिताएं हैं। उनमें कहा गया है, "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" अथर्ववेद का कथन है : "वह अर्यमा है, वह वरुण है, वह रुद्र है, वह परमेश्वर है, वह अग्नि है, वह सूर्य है, वह महान यम है।"

इस दृष्टि के अनुसार, सारा विश्व एक गुह्य देवत्व का प्रतीक है, बिम्ब है, आर्विभाव है। हम चाहें जिस प्रतीक को उपासना के लिए चुन लें, उपासना हम उसी देवत्व की करते हैं। इस दृष्टि का ही व्यावहारिक पक्ष धर्म-सम्बन्धी सहिष्णुता के रूप में उभरता है। यह दृष्टि हमें समझाती है कि प्रतीकों के बीच दिखलाई देने वाले विभेद अवास्तविक हैं और उन विभेदों को लेकर वह मारकाट तथा अत्याचार नहीं किए जाने चाहिए जो संकीर्ण मनीषा वाले धर्मों ने किए हैं।

हिन्दू धर्म की दृष्टि यह भी मानती है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्तर में एक आत्मा है, प्रत्येक आत्मा में एक अभीप्सा है, और जहाँ भी वह अभीप्सा अनन्य है तथा साधना शुद्ध है वहीं भगवान विद्यमान हैं। भगवान सच्चे साधकों को ही अपने निकट बुलाते हैं। विशेषाधिकारों का दावा करने वाले सम्प्रदायों का, अपने आपको मुंहलगा भाईचारा अथवा चर्च अथवा उम्मत मानने वालों का, भगवान के निकट कोई मूल्य नहीं। यह बात सुगमता से समझ में आ जानी चाहिए कि यह दृष्टि उन एकान्तिक दावों को अस्वीकार करती है जो कुछ धर्मों की ओर से "एकमेव और एक मात्र सच्चे ईश्वर" को जानने के नाम पर किए जाते हैं। इस दावे में कोई सार नहीं कि आप सच्चे ईश्वर को तो जानते हैं किन्तु अपने पड़ौसी को नहीं पहिचानते। क्या आप की बुद्धि अथवा आपके मानस में विद्यमान गुण, आपके पड़ौसी में विद्यमान गुणों की अपेक्षा विशुद्धतर हैं ? क्या

आपकी उपासना अपने पड़ौसी की उपासना की अपेक्षा अधिक सच्ची अथवा अधिक शुद्ध है ?

इस दृष्टि से देखने पर इस बात का कोई अर्थ नहीं रह जाता कि आप अपने ईश्वर की परिभाषा किस प्रकार करते हैं। सार्थक बात यह है कि आपकी उपासना में कितनी निष्ठा है, कितनी शुचिता है, कितनी गहराई है। हमारा उपास्य हमारी उपासना से उत्कृष्टतर नहीं हो सकता। ईश्वर उन्हीं को मिलता जो शुद्धभाव से उसकी भक्ति करते हैं। ईश्वर किसी व्यक्ति अथवा सम्प्रदाय के प्रति पक्षपात नहीं करता। यह बात सहज ही समझ में आ जानी चाहिए कि इस दृष्टि में किसी एकान्तिक इलहाम अथवा एकमात्र पुत्र अथवा अन्तिम पैग़म्बर का कोई स्थान नहीं। हिन्दू दृष्टि में सर्वमुक्तिवाद का गुण विद्यमान है। इसमें न कोई अँधेरगर्दी है, न कोई स्वेच्छाचार।

ईश्वर ने मनुष्य का अपना प्रतिरूप बनाया है। किन्तु मनुष्य भी ईश्वर को अपने अनुरूप गढ़ता रहता है। मनुष्य अपनी अभिलाषा, वासना, काम-लिप्सा और अपने स्वार्थ के अनुसार एक क्षुद्रकाय ईश्वर की कल्पना कर लेता है। फिर वह इस ईश्वर को आसनस्थ करके इसकी पूजा करने लगता है। अन्त में वह अन्य लोगों द्वारा इस ईश्वर को मनवाने के लिए मारकाट मचाता है, और वह दावा करता है कि ईश्वर का गौरव बढ़ाने के लिए ही, ईश्वर को महामहिम बनाने के लिए ही, वह यह सब कर रहा है। किन्तु वास्तव में वह मनुष्य अपने ही गौरव को बढ़ाना चाहता है, अपने ही अहंकार की वृद्धि करना चाहता है। ईश्वर को जानने का एकान्तिक दावा करना केवल दम्भ है, कोरी अहम्मन्यता है। इस प्रकार आध्यात्मिक आक्रमण की प्रवृत्ति पनपती है जो अनिवार्यतः स्थूल आक्रमण का रूप धारण करती है।

सारांश यह है कि हिन्दू धर्म प्रतीकों के प्रसंग ये अनेकत्व का अनुयायी है, और उपासना में निहित निष्ठा को ही सार्थक समझता है। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म ने एक अन्य सत्य का साक्षात्कार किया है। संसार में अनेकानेक मनुष्य बसते हैं। विविध मनुष्यों के स्वभाव विविध प्रकार के होते हैं, उनकी प्रवृत्तियाँ विविध प्रकार की होती हैं, उनके साधना-सम्बन्धी सामर्थ्य में भी विविध स्तर देखे जाते हैं। साधना-पथ के लिए प्रस्थान भी वे विविध बिन्दुओं से करते हैं। उनकी क्षमता, निपुणता तथा अभीप्सा भी विविध कोटि की होती हैं। इस अवस्था में सब मनुष्यों से यह अपेक्षा करना कि वे एक ही उपासना-पद्धति का अनुसरण करें अथवा एक ही उपास्य के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करें, भूल ही मानी जानी चाहिए। मानव परिवार में पाई जाने वाली विविधताओं को हमें स्वीकार करना चाहिए, उन विविधताओं का आदर करना चाहिए।

इस दृष्टि के अनुसार विविध जनसमवायों और विविध जातियों के अपने-अपने देवता हैं, उनके लिए उपादेय अपनी-अपनी परम्पराएँ हैं, अपने-अपने स्वधर्म हैं। अपने-अपने स्वधर्म पर आरूढ़ होकर उपासना करना ही उनकी चरम उपासना है। अतएव हमको एक ऐसी मनीषा का पोषण करना चाहिए जिसके अनुसार जो लोग हमारे साथ नहीं है, वे हमारे विरुद्ध नहीं हैं। वे लोग ही वस्तुतः हमारे साथ हैं जो स्वयं अपने साथ हैं। हमें दूसरे लोगों के सामने भीमभाई बनकर नहीं जाना चाहिए।

एक उद्यान को ही ले लीजिए। उस में विविध प्रकार के पौदे, पेड़ और फल-फूल होते हैं। उनमें से प्रत्येक के लिए एक अनुकूल ऋतु आती है, प्रत्येक अपने ढंग से रस संजोता है, और प्रत्येक की अपनी आवश्यकताएँ होती हैं। उनमें से प्रत्येक अपने हिस्से के आतप, वायु और जल का सेवन करता है और समय पाकर अपना आकार-प्रकार प्राप्त करता है। माली कभी यह प्रयास नहीं करता कि उद्यान के समस्त पेड़, पौदे और फलफूल एक ही ऋतु में पनपें, एक ही प्रकार से रस संजोएं और एक ही गति से परिपक्व हों। वह तो उनकी अलग-अलग आवश्यकताओं के अनुसार ही उनकी देखरेख करता है। यही ठीक भी है। यदि माली उनके साथ मनमानी करने लगे तो वह सबको नष्ट कर डालेगा। प्रकृति के नियमों के अनुसार सेवा पाकर ही रंग खिलते हैं, विविधता का प्रसार होता है, और हम सबको जीवन तथा भरण-पोषण मिलता है।

जब हम अपने मनमाने भगवान के लिए जिहाद करने निकलते हैं, और अपनी आस्थाएं तथा रीति-नीतियां दूसरों पर लादने के लिए उनका मतान्तरण करते हैं, तो हम भगवान के प्रति अपनी अनास्था ही व्यक्त करते हैं। दूसरों में विद्यमान भगवान को नहीं देख पाना भगवान की सत्ता को अस्वीकार करना है।

अध्यात्मान्वेषण एक तीर्थयात्रा है जिसमें विविध प्रकार के व्यक्ति, विविध दिशाओं से चलकर, विविध पथों को पार करते हुए, विविध क्षेत्रों से गुजरते हुए, विविध भावनाओं का वहन करते हुए, और विविध अनुभूतियों का नैवेद्य लेकर, आ मिलते हैं। वे विविध स्वरों में, विविध रूपों का आश्रय लेकर, विविध भाषाओं और भावनाओं द्वारा भगवान का गुणगान करते हैं। प्रज्ञावान पुरुषों ने कहा है कि प्रतीकों और रूपों को लेकर विवाद मत करो, प्रतीकों और रूपों के परे उस भावना को देखो जो एकरस है।

हिन्दू मनीषा का पोषण इसी प्रकार के शिक्षापदों द्वारा हुआ है। उस मनीषा के मूल में अध्यात्म की यही दृष्टि मिलती है। इसी दृष्टि ने हिन्दुओं में धर्म-सम्बन्धी सहिष्णुता की जड़ों को सुदृढ़ किया है। धर्म-सम्बन्धी सहिष्णुता तथा

स्वाधीनता, उदारवाद और मानववाद के भी महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं। किन्तु इन मुद्दों का मूल अन्तरतम की गहराइयों में मिलता है, आत्मा के सत्य में निगूढ है। वह सत्य बुद्धि की पहुँच के परे हैं, सामान्य धर्मपरायणता के भी परे है। कुछ धर्म कई-एक विशेष आस्थाओं का बहुत अधिक आग्रह करते हैं। वह सत्य इन आस्थाओं के भी परे हैं। ये धर्म कई-एक भावावेशों की प्रेरणा देते हैं। वह सत्य इन भावावेशों के भी परे हैं। ये धर्म ऐसे दायित्वों के भार से अभिभूत हैं जो इन्होंने स्वयं ही अपने लिए निर्दिष्ट कर लिए हैं। वह सत्य इन निर्देशों के भी परे हैं।

हिन्दूधर्म और सामी मज़हब

पाश्चात्य जड़वाद का चाहे जो भी रूप हो, उदारवादी अथवा कम्युनिस्ट, हिन्दूधर्म का उस जड़वाद के साथ मौलिक मतभेद हैं। किन्तु उसका मतभेद केवल जड़वाद के साथ ही महीं, कई-एक धर्मों तथा धर्म-मनीषाओं के साथ भी है, विशेषतया उन मज़हबों के साथ जिनका मूल सामी परम्परा में मिलता है। प्रस्तुत प्रसंगमें हमारा आशय ईसाइयत तथा इस्लाम से है।

हिन्दूधर्म का आग्रह आध्यात्मिक आस्थाओं के प्रति हैं। अतएव इस धर्म का मेल उन संस्कृतियों के साथ सहज ही बैठ जाता है जो अध्यात्म के प्रति श्रद्धावान् हैं। संसार भर के सदाशय-सम्पन्न लोगों में यह विश्वास पनप रहा है कि सब धर्म एक ही सत्य का संचय किए हुए हैं और सब धर्मग्रन्थ एक ही मूलतत्त्व को मुखरित करते हैं। अपने इस विश्वास के समर्थन में वे लोग विभिन्न धर्मग्रन्थों में से उद्धरण भी जुटाते हैं। व्यर्थ के संघर्षों से पीड़ित आज के संसार में एकता तथा सौहार्द की इस भावना को बल मिलना ही चाहिए। यदि मानव-मात्र की सहज-साधारण भावभूमियां एकसमान हैं, तो उनकी आध्यात्मिक भावभूमियां भी विभिन्न नहीं हो सकती। यदि गुदगुदाने पर सभी मनुष्यों को हँसी आती है और कुछ चुभ जाने पर पीड़ा का अनुभव होता है, तो यह अनिवार्य है कि जीवन के औदात्य तथा रहस्य का संधान मिलने पर भी सभी मनुष्य अभिभूति, विस्मय एवं श्रद्धा से छलछला उठें।

किन्तु सर्वधर्म-समभाव की दृष्टि सब लोगों के लिए सहज-गम्य नही है। किसी भी हिन्दू अथवा बौद्ध के लिए तो यह दृष्टि स्वभाव-सिद्ध है। किन्तु ईसाइयत तथा इस्लाम, सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों में ही इस दृष्टि का तिरस्कार करते हैं। ये धर्म केवल यही नहीं मानते कि ये अन्य धर्मों से भिन्न हैं, ये यह भी आग्रह करते हैं कि ये श्रेष्ठतर हैं। अपने-अपने जन्मकाल से ही इन धर्मों का यह विश्वास रहा है कि इनका उपास्य देवता इनके पड़ौसियों के उपास्य से बढ़-चढ़ कर हैं। साथ ही इनका यह विश्वास भी रहा है कि ये

स्वयं सत्य पर आरूढ़ है और अन्यान्य सभी धर्म मिथ्या का वहन कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति का एक परिणाम तो यह हुआ कि इन धर्मों में मिनशरी-भावना तथा जिहाद का समावेश हो गया। ये धर्म मान बैठे कि अन्धकाराछन्न मूर्तिपूजकों, काफिरों तघा शैंतान के अनुयाइयों को सच्चे धर्म के सिद्धान्त सिखलाना इनका परमेश्वर-प्रदत्त दायित्व है।

यह सत्य है कि, विश्ववादी मनीषा का प्रभाव पड़ने पर, कुछ लोगों को ईसाइयत या इस्लाम की यह दृष्टि अब मान्य नहीं रही। किन्तु ईसाइयत तथा इस्लाम की प्रचार-संस्थाओं में तो अब भी यही दृष्टि प्रबल है। एशिया तथा अफ्रीका के देशों में ईसाइयत तथा इस्लास का कार्यकलाप देखने पर यह निष्कर्ष निकालना ही पड़ता है। उन बीते दिनों में जब ईसाइयत और इस्लाम सत्तारूढ़ थे, इनके कार्यकलाप का यह रूप सर्वथा स्पष्ट था। वह पुरानी पद्धति अब समीचीन नही रही। फलस्वरूप, उसमें कुछ हेर-फेर किए गए हैं। फिर भी पुरानी मनोवृत्ति ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इन धर्मो ने जिन नई पद्धतियों का अवलम्बन लिया है, वे वैसी ही मतान्ध, धूर्त और विनाशशील हैं, जैसी कि पुरानी पद्धतियाँ थीं। यह बात हमें भुलानी नहीं चाहिए।

एक और बात भी है जिसमें कुछ तत्वमीमांसा का समावेश है। यदि हम यह मान भी लें कि विभिन्न धर्म मूलतः एक-जैसे हैं, तो भी उनके बीच देखे जाने वाले मतभेदों को अनदेखा नही किया जा सकता। उन भेदों का मूल भी हमें खोजना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, एक और उपनिषद् तथा गीता जैसे धर्मग्रन्थों को ले लीजिए और दूसरी ओर बाइबल तथा कुरान को। दोनों पक्षों की दृष्टियाँ विभिन्न हैं, मर्म विभिन्न और भावभूमि भी विभिन्न। अनेक अंशों में आपको ऐसा प्रतीत होगा कि यह विभिन्नता केवल शैली अथवा व्याख्या-पद्धति का परिणाम ही नहीं है। आपको यह बोध होगा कि ये दो प्रकार के धर्मग्रन्थ दो प्रकार की मनीषाओं का वहन करते हैं। अतएव बुद्धि तथा अध्यात्म, दोनों ही यह माँग करते हैं कि इन विभिन्नताओं का भी अध्ययन किया जाए, इनकी मीमांसा की जाए। इन विभिन्नताओं को अनदेखा करना अथवा इनका तिरस्कार करना, बुद्धि को तिलाञ्जलि देना ही कहलाएगा।

धर्मग्रन्थों के इन दो वर्गों का इस दृष्टि से पाठ करने पर हम देखते हैं कि इनकी मनीषा नितान्त भिन्न हैं। सामी धर्मग्रन्थ ललकारते हैं, भर्त्सना करते हैं, धमकी देते हैं। उनमें उद्वेग है। वे आदेश-प्रधान हैं। वे सतर्क करते हैं और विवश भी। उनमें एक आवेश का स्वर है। दूसरी ओर हिन्दू धर्मग्रन्थों की मनीषा में सहजता पाई जाती है। वे शान्त रहकर ही अपनी बात समझाते हैं। पहले प्रकार के धर्मग्रन्थ आपको आगे की ओर धकेलते हैं। दूसरे प्रकार के

धर्मग्रन्थ आपको उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते हैं। पहले प्रकार के धर्मग्रन्थ आपके भीतर भरी आशा तथा आशंका का आश्रय लेते हैं, आपके भीतर भरे राग और द्वेष की दुहाई देते हैं, नरक का भय दिखलाते हैं और स्वर्ग के सपने सँजोते हैं। दूसरे प्रकार के धर्मग्रन्थ केवल आपकी चेतना को जागृत और विकसित करने का प्रयास करते हैं।

इसी प्रकार की और भी कई विभिन्नताएँ हैं। हिन्दू दृष्टि मीमांसा-परक, अनेकान्त और अन्तर्मुखी है। ईसाइयत तथा इस्लाम की दृष्टि बहिर्मुखी, एकान्तिक, नाटकीय और प्रदर्शनपूर्ण है। इस दृष्टि में आदम और हव्वा जन्म लेते हैं, निषिद्ध फल खाया जाता है, शैतान का स्थान है और एक पुरातन पाप की भावना पनपती है। फिर एकमात्र ईश्वर अपने एकमात्र 'पुत्र' को इसलिए पठाता है कि वह अपने रक्त से उस पुरातन पाप का प्रायश्चित करे। फिर वह प्रलय का दिन आता है जब कि फरिशतों से घिरे सिंहासन पर वह एकमात्र पुत्र विराजमान होता है। उस दिन कृपा के पात्र कुछ लोग स्वर्ग में प्रवेश पाते हैं, और शेष सबको अनन्तकाल के लिये नरक में धकेल दिया जाता है।

इन विभिन्नताओं को शैली अथवा व्याख्या-पद्धति की विभिन्नताएँ नहीं कहा जा सकता। ये मतभेद मौलिक हैं। ये मतभेद इसलिए उठते हैं कि दोनों प्रकार के धर्मग्रन्थों की विषय-वस्तु दो प्रकार की है। इन विषय-वस्तुओं के बीच तत्त्वतः कुछ सम्बन्ध भले ही हो किन्तु मूलतः ये दोनो भिन्न हैं। उपनिषद् तथा गीता रहस्य के ग्रन्थ हैं। वे सदाचार की भूमि को दृढ़ मानकर ही अपनी बात आगे बढ़ाते हैं। दूसरी ओर, बाइबल तथा कुरान अपने-अपने ढंग से सदाचार की शिक्षा देते हैं। यह सदाचार कभी-कभी उन लोगों को रहस्य की ओर अग्रसर कर देता है जो शुद्ध हो गए हैं। किन्तु रहस्य की जिज्ञासा सामी धर्मों के लिए अनिवार्य नहीं है। दो प्रकार के धर्मग्रन्थों के बीच पाई जाने वाली यह विभिन्नता अन्य विभिन्नताओं को जन्म देती है, जिनमें कुछेक मौलिक हैं, जैसे कि ईश्वर, मनुष्य, मानवजाति, जीव, जगत, सदाचार और श्रुति से सम्बन्ध रखने वाली धारणाएँ।

रहस्य-प्रधान दृष्टि में ईश्वर हमारे अन्तरतम का निगूढ़ सत्य है, सदाचार उस सत्य की सहज अभिव्यक्ति है, और जो कोई भी प्राणपन से चरम सत्य की कामना करता है उसी को वह सत्य प्राप्त हो जाता है। अतएव इस दृष्टि में ईश्वर अन्तर्यामी है, सदाचार स्वभावगम्य और सहज है, सत्य अनुभूति का विषय है; और श्रुति सबके लिए प्राप्य है। किन्तु, दूसरी ओर, जिन धर्मग्रन्थों में रहस्य की भावना अधकचरी है, उनमें सदाचार भी अधूरा रह जाता है। ऐसे धर्मग्रन्थों में ईश्वर एक बाह्य सत्ता है और सदाचार उस सत्ता का आदेश तथा आह्वान है। इस प्रकार नैतिक नियम, उपदेश और भर्त्सना से भरे बाह्याचार बन

जाते हैं। इस संदर्भ में व्यक्ति के कर्त्तव्य की सीमा उसके सम-सम्प्रदाय वालों के परे नहीं बढ़ पाती। इस दृष्टि में सत्य का स्रोत है कोरी आस्था, श्रुति सबको एक समान प्राप्य नहीं, और मुक्ति कुछ गिने-चुने लोगों को ही मिल सकती है। फिर मुक्ति का मार्ग भी सीधा न रहकर जटिल बन जाता है। मुक्ति पाने के लिए किसी व्यक्ति-विशेष की शरण में जाना पड़ता है।

और भी विभिन्नताएँ हैं और उनको व्यक्त करने की और भी पद्धतियाँ हैं। ईसाइयत तथा इस्लाम आस्था के धर्म हैं। हिन्दू धर्म तथा उसका एक प्रबल पर्याय, बौद्ध धर्म, जिज्ञासा, आत्मबोध तथा प्रज्ञा को मानने वाले धर्म हैं। पूर्वोक्त धर्मों का आधार है भावनाओं का आवेश, परोक्त धर्म अन्तश्चेतना को जागृत करना चाहते हैं। पूर्वोक्त धर्मों का विषय है एक ही विचार-बिन्दु के प्रति उत्कट अनुराग, परोक्त धर्मों का आधार है नेति-नेति। पूर्वोक्त धर्म आस्था के प्रति आग्रहशील हैं और इनमें तर्क तथा तत्त्वमीमांसा का तिरस्कार करने की प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है। परोक्त धर्म ज्ञान को प्रधान मानते हैं; वे आस्था का तिरस्कार नहीं करते किन्तु तर्क तथा तत्त्वमीमांसा को उनका उचित स्थान देते हैं।

आस्था में मूलतः कोई दोष नहीं है। आध्यात्मोन्मुख जीवन में उसका स्थान तथा उसकी उपादेयता स्पष्ट है। वह संशय के बीच निश्चय जुटाती है, अटपटे और अन्तहीन विश्व में एक सुरक्षित आवास का आश्रय देती है तथा चंचल मन के लिए एक विश्राम-स्थल खोजती है। अतएव अध्यात्म के विस्तार में ईसाइयत या इस्लाम सरीखे धर्मों का आकर्षण तथा उनकी उपादेयता भी स्वभावसिद्ध हैं। एक प्रकार की मनीषा वाले मनुष्यों के लिए तो दूसरे प्रकार के धर्म सुबोध ही नहीं हो सकते।

किन्तु अन्य प्रकार के मनुष्य भी हैं जिनके लिए केवल आस्था ही पर्याप्त नहीं। वे आत्मानुभूति के विस्तृत प्रांगण में विचरना चाहते हैं। ऐसे लोगों को बुद्धि का आश्रय लेना पड़ता है। ग्रीक लोग इसी बुद्धि को 'नू' कहते थे अर्थात् सारभूत सत्य अथवा दैवी बुद्धि। किन्तु यह बुद्धि उस साधारण तर्कप्रवृत्ति से बहुत भिन्न है जो सम्पूर्ण को नहीं देख पाती और जो संशयाविष्ट रहती है। तर्क-प्रवृत्ति बड़े आयास के द्वारा दो और दो मिलाकर चार बना पाती है। वह प्रवृत्ति सैंकड़ों प्रकार के राग और द्वेष के वशीभूत रहती है। इसके विपरीत, निष्ठावान बुद्धि सब कुछ साक्षात् देख सकती है। और उनकी क्रिया अनायास और स्वच्छन्द होती है। उस बुद्धि में सत्य के सार को समझने के साथ-साथ उसकी व्यापकता को पकड़ने की क्षमता भी रहती है।

रहस्य की दृष्टि में आस्था और बुद्धि का सहज समागम देखा जाता है।

आस्था और बुद्धि जब एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं तो दोनों का ही सामर्थ्य तथा स्तर ह्रास को प्राप्त होता है। बुद्धि के अभाव में आस्था अंध, अबोध और असहिष्णु बन जाती है। और आस्था के अभाव में बुद्धि कोरे संशय संजोती रहती हैं, नास्तिक बन जाती है तथा अध्यात्म के प्रसंग में मनुष्य को दिग्भ्रान्त कर देती है। ऐसी बुद्धि को योग की मनीषा अथवा प्रज्ञा नहीं माना जा सकता। उसको प्रज्ञावाद अथवा मनीषा का आडम्बर ही माना जाता है। ऐसी बुद्धि में विवेक नहीं रहता, और न रह पाते हैं अध्यवसाय, ओज और सदाशय। यह बुद्धि अन्धी हो जाती है। इसके लिए प्रत्येक दृष्टि एक-समान सार्थक होती है। यह किसी भी दृष्टि के मर्म में नहीं पैठ पाती। यह बुद्धि उस प्रत्येक दावे अथवा पाखण्ड को स्वीकार कर लेती है जिसके पीछे इसे पर्याप्त आग्रह दिखाई देता है। यह बुद्धि किसी भी अन्ध आस्था के आगे झुक जाती है। ग्रीस तथा रोम के प्राचीन धर्मों ने बुद्धि की इस दुर्बलता का परिचय दिया था। हिन्दूधर्म ने भी यह दुर्बलता दिखाई है और अभी भी दिखला रहा है। एक अन्य स्तर पर सारा लोकतान्त्रिक पक्ष इस दुर्बलता का शिकार है। इसीलिए उदारवादी प्रवृत्तियाँ अन्ध मतवादों के द्वारा आक्रान्त होने पर पलायन करती जा रही हैं।

किन्तु उन धर्मों में जिनमें रहस्य की भावना अपने सच्चे स्वरूप में विद्यमान है, आस्था और बुद्धि के शुद्ध स्वरूप का दर्शन होता है। उस शुद्ध स्वरूप में आस्था और बुद्धि के वे अर्थ उपलब्ध होते हैं जो केवल श्रुति पर आधारित मज़हबों में उपलब्ध अर्थों से सर्वथा विभिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दूधर्म प्रधानतः एक बोधिप्रवण धर्म है। इस धर्म में आस्था को 'श्रद्धा' की संज्ञा दी जाती है—वह आस्था जो हृदय की गहराइयों में निगूढ़ रहकर प्रतिष्ठित है। यहाँ पर आस्था का अर्थ है आत्मा के निगूढ़ सत्य के प्रति आस्था, आत्मा की अनभिव्यक्त सम्भावनाओं के प्रति आस्था। यहाँ आस्था का अर्थ किसी पैगम्बर-विशेष अथवा पुस्तक-विशेष की प्रामाणिकता के प्रति अन्धविश्वास बिल्कुल नहीं है। न ही यह आस्था किसी संस्था-विशेष द्वारा प्रणीत सिद्धान्त-संहिता का सहारा लेती है। आस्था का यह विकृत रूप केवल उन मज़हबों में ही मिलता हें जो केवल श्रुति पर आधारित है।

इसी प्रकार, उपरोक्त दो धर्म-परम्पराओं में बुद्धि का अर्थ भी भिन्न है। ईसाइयत तथा इस्लाम में आदितः ही बुद्धि का तिरस्कार किया गया है। आगे चलकर जब बुद्धि ने सिर उठाया भी तो आस्था की दासी बनकर। बुद्धि का एक ही काम रह गया—आस्था का मण्डन करना और एक ही मत, श्रुति, पैगम्बर और सिद्धान्त का श्रेष्ठत्व प्रमाणित करना। इस प्रकार बुद्धि

का स्खलन हुआ और उसके साथ व्यभिचार किया गया। बुद्धि को इन बन्धनों से मुक्त करने के लिए पाश्चात्य के लोगों को ईसाइयत के विरुद्ध कठोर संघर्ष करना पड़ा। इस्लाम की दुनिया को तो अभी यह संघर्ष करना है और अपने मानस को मतान्धता से मुक्त करना है। इस्लाम को तो अभी भी अपने धार्मिक सिद्धान्तों को, अपने इतिहास को, अपने धर्मग्रन्थ को, अपने नबी को, नबी के व्यक्तित्व को तथा उनके द्वारा दी गई श्रुति को, बुद्धि की तुला पर, पारमार्थिक एवं व्यावहारिक, दोनों ही प्रकार से तोलना है। सारांश यह है कि इस्लाम को आत्मान्वेक्षण सीखना पड़ेगा।

हिदूधर्म ने बुद्धि से ऐसा काम कभी नहीं लिया। हिन्दूधर्म में बुद्धि का अपना स्वधर्म है, अपनी प्रवृत्ति है। इस स्वधर्म और प्रवृत्ति को पूरी स्वतन्त्रता मिली है। बुद्धि को प्रश्न पूछने का अधिकार हैं। वह अन्वेषण कर सकती है, शंकाएं उठा सकती है, उड़ान भर सकती है, कल्पना के लोक में विचरण कर सकती है। केवल अध्यात्म की अभीप्सा करते समय और अध्यात्म के लोक में बाधा-बन्धन-हीन विचरण करते समय बुद्धि को शुद्ध करना पड़ता हें, जिससे कि मनुष्य का अधोमुखी मानस बुद्धि का दुरुपयोग न कर पाए और मनुष्य के भीतर भरे रागद्वेष उसे विपन्न न कर सकें।

इस प्रकार हिन्दूधर्म उस नए युग का धर्म है जिसमें बुद्धि ने एक नया महत्व प्राप्त किया है, जो परीक्षण के बिना कुछ भी मानने को तैयार नहीं, और जो अन्ततः एक सारभूत तथा सर्वाधिक सार्थक सत्य की खोज में रत है। आधुनिक पाश्चात्य बुद्धिवाद को अपनी कड़ी कमाई मानता है। हिन्दूधर्म में यह सामर्थ्य है कि उस बुद्धिवाद का हनन किए बिना ही पाश्चात्य की आध्यात्मिक अभीप्सा को सन्तुष्ट कर सके। हिन्दूधर्म आस्था और बुद्धि, दोनों को ही पराकाष्ठा पर पहुँचा सकता है।

(२)

हिन्दू धर्म और सामी धर्मों की उपर्युक्त व्याख्या कई-एक अन्य मतभेदों की ओर संकेत करती है। ईसाइयत अथवा इस्लाम का केन्द्रबिन्दु है इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष; हिन्दू धर्म का केन्द्र-बिन्दु है मनुष्य की ऊर्ध्वस्थ चेतना में विद्यमान सत्य। यदि ईसा मसीह अथवा मुहम्मद ने जन्म नहीं लिया होता, तो न ईसाइयत का उदय होता न इस्लाम का। किन्तु हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य का धर्म इस प्रकार के किसी संयोग पर निर्भर नहीं करता। धर्म तो मनुष्य की आत्मा में निगूढ़ है। वह सब समय वहाँ था और रहेगा। वह शाश्वत है, सनातन है। किन्ही विपरीत कारणों से वह धर्म कुछ समय के लिए दबा रह सकता है। किन्तु उसकी सत्ता सदा अक्षुण्ण रहती है और सुअवसर

पाते ही वह अभिव्यक्त हो जाता है। वह कुछ समय के लिए सुप्त रह सकता है। किन्तु किसी भी सारगर्भित शब्द का स्पर्श पाकर वह जाग सकता है, अथवा किसी भी अध्यात्मान्वेषी पुरुष का आह्वान पाकर वह सिंहनाद कर सकता है। अथवा, अनुकूल काल आने पर वह स्वमेव उठ कर बैठ सकता है। अध्यात्म की चेतना समय-समय पर आने वाले ऋषि-मुनियों के माध्यम से भी पनपती है। किन्तु इन ऋषि-मुनियों में कोई अनोखापन नहीं होता। इनमें से न किसी को प्रथम पुरुष माना जाता है, न अन्तिम उपदेष्टा। इस प्रकार का प्रत्येक दावा कोरा पाखण्ड है, केवल आत्मवञ्चना है।

इस प्रसंग से सामी धर्मों की विचार-पद्धति बहुत कच्ची है। वे मानते हैं कि ईश्वर अपने किसी प्रिय व्यक्ति को, अपने पुत्र अथवा पैग़म्बर को, अपना सन्देश सुनने के लिए चुन लेता है। तदुपरान्त अन्य सब मनुष्यों को वह सन्देश उधार ही मिल सकता है। किन्तु हिन्दू धर्म इस प्रकार के किसी एकाधिकार को स्वीकार नहीं करता। ईश्वर-चेतना आत्मा का धर्म है और कोई भी सच्चा साधक उस चेतना में प्रवेश पा सकता है। ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी मध्यस्थ को घसीटना मिथ्या धारणा है।

वस्तुतः सामी धर्मों में ईश्वर द्वारा चुना हुआ व्यक्ति-विशेष केवल एक मध्यस्थ ही नहीं है। वह मुक्तिदाता भी है, और त्राता भी। वह अपने अनुयाइयों के पक्ष में ईश्वर के दरबार में गवाही देता है। वह अपना यह काम अपने शिष्यों के सुपुर्द भी कर सकता है। और वे शिष्य इस काम के लिए दूसरे अधिकारी नियुक्त कर सकते हैं। फलस्वरूप इन धर्मों का नाता ईश्वर से नहीं रह जाता। ईश्वर को स्थानापन्न करने वाले लोग ही इन धर्मों के ठेकेदार बन जाते हैं।

इस एकमेव मध्यस्थ की धारणा में से एक अन्य धारणा का उद्‌गम होता है—एक ऐसे एकमेव धर्मग्रन्थ की धारणा जिसमें सारे सत्य संग्रहीत हैं। ईश्वर अपने एकमात्र पुत्र अथवा पैग़म्बर के माध्यम से, अपने समस्त सत्य अन्तिम रूप में और सदा-सर्वदा के लिए व्यक्त कर देता है। इन सत्यों का संग्रह एक पुस्तक में किया जाता है जो एकमात्र धर्मपुस्तक मान कर पूजी जाती है। यह माना जाने लगता है कि उस पुस्तक में ईश्वर का 'वाक्' विद्यमान है—मानव मात्र के लिए ईश्वर द्वारा प्रदत्त एकमात्र श्रुति। तदनन्तर अन्य सब श्रुतियों और पुस्तकों का या तो तिरस्कार किया जाता है या उनको एकमात्र पुस्तक की पृष्ठभूमि समझा जाता है। अन्य सब श्रुतियों और पुस्तकों की सार्थकता यही रह जाती है कि वे नई श्रुति का अनुमोदन करें। परवर्ती प्रत्येक श्रुति या तो मिथ्या है, अथवा व्यर्थ। यदि परवर्ती श्रुतियों

में ऐसी बातें मिलती हैं जो अन्तिम श्रुति से विपरीत अथवा भिन्न है, तो वे मिथ्या है । अन्य श्रुतियां यदि अन्तिम श्रुति के अनुरूप है तो वे व्यर्थ हैं। दोनों ही अवस्थाओं में उन अन्य श्रुतियों को विद्यमान रहने का कोई अधिकार नहीं रह जाता ।

इस मान्यता की पुष्टि इसके अनुयायी अपने व्यवहार द्वारा करते हैं । जिन स्थानों में उनकी सत्ता निरंकुश हो गई वहाँ उन्होंने स्थानीय लोगों के धर्मग्रन्थों को समूल नष्ट कर दिया । मिशनरी लोग डींग हाँकते हैं कि उन्होंने भारत में सर्व-प्रथम छापाखाना खोला था । किन्तु कैरी नाम के मिशनरी ने अपने श्रीरामपुर के छापाखाने से जो पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं उनमें हिन्दू धर्मग्रन्थों पर कीचड़ ही उछाली गई थी । कुछ दिन पूर्व वाच-टावर नामक संस्था के दो सदस्य, माँ और बेटी, हम,रे घर आ पहुंचे । वे दोनों स्वेच्छा से मिशन का काम कर रही थीं। उन्होंने हमें बाइबल का एक सन्देश सुनाया जिसके अनुसार शीघ्र ही प्रलय होने वाली है । उन्होंने एक पुस्तक भी हमें दी जिसमें कई-एक कसौटियाँ बताई गई थीं जिनके आधार पर यह निर्णय किया जा सकता था कि कोई श्रुति दिव्य वचन है अथवा शैतान की दास्तान । फिर उस पुस्तक में बड़ी आत्मतृप्ति के साथ यह निष्कर्ष निकाला गया था कि बाइबल दिव्य वचन है और सारे हिन्दू धर्मग्रन्थ शैतान की कृतियाँ हैं । बेटी की आयु १५-१६ वर्ष की थी । उपर्युक्त पुस्तक खरीदने से पूर्व हमने उससे कहा कि उसकी उम्र शिक्षा ग्रहण करने की है, शिक्षा देने की नहीं । किन्तु मिशनरी मानस को तो शिक्षक बनना ही सुहाता है । उसको सीखने योग्य कुछ भी दिखाई नहीं देता ।

इस प्रकार सामी धर्मों के अनुसार धर्मग्रन्थ केवल एक है। उसी में एकमेव ईश्वर का एकमेव वाक् मिलता है। उस वाक् को ईश्वर का एकमात्र पुत्र अथवा एकमात्र पैग़म्बर सातवें आसमान से उतारकर लाया है। आपको जो भी मार्गदर्शन चाहिए, वह उस धर्मग्रन्थ में मिलेगा । इन धर्मों के अधिक कट्टरपन्थी सम्प्रदाय तो यह भी कहते हैं कि एकमात्र धर्मग्रन्थ को ठीक समझने के लिए सम्प्रदाय के किसी विद्वान अथवा अधिकारी से उसकी व्याख्या सुननी चाहिए । इन सम्प्रदायों के भीतर मतभेद हो सकते हैं । कई-एक मत-भेद बहुत प्रखर भी हैं । किन्तु ये सब सम्प्रदाय एक बात पर एकमत रहते हैं —अब आप सत्य को पा जाने के पात्र हैं, और सत्य अब आप के पास पहुँचने के लिए तैयार है । इन सम्प्रदायों के मीमांसकों ने तो सत्य को और भी सुलभ बना डाला है। उन लोगों ने सत्य को सूत्रों में बाँटा है, उसकी संहिता बना दी है और उसको क्रमबद्ध भी कर दिया है ताकि किसी अनुयायी को बाधा का बोध न हो। दुकानों पर बिकने वाली भोजन सामग्री के समान सत्य को

अब पका-पकाया और पैकेट में बन्द खरीदा जा सकता है। इसी प्रकार के पैकेट काफिरों के देशों को निर्यात करने के लिए भी बनाए गए हैं।

हिन्दू धर्म का इस प्रकार के किसी 'सत्य' से कोई वास्ता नहीं। वह धर्म इस प्रकार के "सत्य" को अर्थहीन समझता है। हिन्दू धर्म उस सत्य का साक्षी है जो मनुष्य के अपने अन्तरतम में आलोकित होता है। मनुष्य को उस सत्य का स्वयं साक्षात्कार करना पड़ता है। मनुष्य जितना ही अधिक अपने आपको समझ पाता है, उतना ही अधिक वह सत्य के निकट जा पहुंचता है। इस सत्य को सूत्रों में निबद्ध नहीं किया जा सकता, न ही इसको आस्थाओं की महारनी बनाया जा सकता है। ऐसा सत्य उधार भी नहीं लिया-दिया जा सकता। ऐसे सत्य को न घोटा जा सकता है, न रटा जा सकता है और न आत्मप्रताड़ना का आश्रय बनाया जा सकता है। हिन्दू धर्मग्रन्थ जिस सत्य का आदर करते हैं उसका अवतरण अन्यही प्रकार से होता है—साधना के द्वारा, आत्मान्वेषण के द्वारा। उस सत्य को पाने के लिए उसका पात्र बनना पड़ता है। उसको पाने के लिए दूसरा जन्म लेना पड़ता है, द्विज बनना पड़ता है। वह सत्य द्विज द्वारा ही प्राप्य है।

यह बात अब स्पष्ट हो जाती है कि इस दृष्टि में धर्मान्तरण का कोई स्थान नहीं। जो धर्म सत्यनिष्ठ है उसको न उधार लिया जा सकता है, न उधार दिया जा सकता है। ऐसा धर्म तो सदा मनुष्य के अन्तर में वास करता है, सदा मनुष्य के साथ चलता है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपना पथप्रदीप है। इस प्रसंग में धर्मान्तरण यदि होता भी है तो अपने अन्तर में ही। यह आभ्यन्तर धर्मान्तरण उस धर्मान्तरण से बहुत भिन्न है जिसका परिचय ईसाइयत तथा इस्लाम ने अनेक देशों में दिया है। ईसाइयत तथा इस्लाम द्वारा किए गए धर्मान्तरणों का रूप राजनीतिक अथवा सैनिक रहा है। अथवा उसको आक्रामक दुकानदारी कहा जाना चाहिए।

ज्ञान-प्रधान धर्मों की पकड़ मनीषा-प्रधान होती है। ये धर्म जानते हैं कि अध्यात्म के सम्यक् सत्य का बाहर से आयात नहीं किया जा सकता, भले ही कोई कितना ही कठोर प्रयास करे। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सत्य को किसी व्यक्ति के सामने रख दीजिए। वह उस सत्य का अपना ही अर्थ निकालेगा—ऐसा अर्थ जो उसकी आत्मशुद्धि के स्तर के अनुरूप है, और जो उसके लिए सुबोध है। बहुधा वह उस सत्य का उपयोग अपनी दुर्बलताओं को छुपाने के लिए करेगा, अपने क्षुद्र स्वार्थों को साधने के लिए करेगा।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अध्यात्म-चर्चा महत्वहीन है और अध्यात्म के उपदेशक का कोई स्थान नहीं। इसका अर्थ यही है कि अध्यात्म का मार्ग

कठिन है। इस दुर्गमता को समझने के कारण ही हिन्दू धर्म मंच पर चढ़ कर एक ही सांस में समूचे सत्य की घोषणा नहीं करता। इसके विपरीत, हिन्दू धर्म एक आध्यात्मिक संस्कृति का विस्तार करता है—एक ऐसे आध्यात्मिक अनुशासन का विस्तार जिसके माध्यम से सत्य का अन्वेषण करने वाले की क्षमता में वृद्धि हो सके। हिन्दू धर्म ऐसे सत्य और सदाचार का बोझ मनुष्य पर नहीं लादता जो उसकी क्षमता के बाहर हो। इसके विपरीत वह धर्म अनेक धर्मों की बात कहता है जिनमें आत्म-धर्म सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार भिन्न प्रकार के मनुष्यों को अपनी-अपनी पँहुच और पकड़ के अनुसार अपना-अपना धर्म निर्णीत करने में सहायता मिलती है।

तो हम देखते हैं कि हिन्दु धर्म एक ऐसे एकमेव ईश्वर की दुहाई नहीं देता जो अपने आपको केवल एक ही व्यक्ति-विशेष पर प्रकट कर सकता है, और जो अन्य सब मनुष्यों को बाध्य करता है कि सत्य का साक्षात्कार उस व्यक्ति-विशेष के माध्यम से करें। इसके विपरीत हिन्दू धर्म उस सत्य का साक्षी है जो उन सब पर प्रकट होता है जिन्होंने उस की खोज की है, जिन्होंने अपनी अभीप्सा को शुद्ध किया है और जिन्होंने साधना द्वारा अपने आपको तैयार किया है। हिन्दू धर्म यह भी नहीं मानता कि श्रुति केवल एक ही है। इस धर्म के मत में भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी ऋषि-मुनियों और आत्मदर्शियों की वाणी श्रुति के समान है। हिन्दू धर्म यह बात भी भली-भाँति जानता है कि दर्शन का दावा करने वाले सभी दर्शन ईश्वरीय दर्शन नहीं होते। हिन्दू धर्म केवल इसीलिए किसी वाणी को ईश्वरीय वाणी नहीं मान लेता कि उसका उच्चारण आवेश में आकर और थूक बिलो किया गया है। हिन्दू धर्म को यह ज्ञात है कि बहुत-सी श्रुतियां जो दिव्य होने का दावा करती हैं वास्तव में किसी न किसी निकृष्ट स्रोत से निकली हैं। मनुष्य के भीतर भरी वासना अनेक श्रुतियों की जन्मदात्री है। उन श्रुतियों में गंदगी और कुत्सा के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। योग हमें सिखलाता है कि हम इस प्रकार की श्रुतियों से सावधान रहें। यह एक विशद विषय है जिसका विस्तार हम यहाँ नहीं कर रहे।

(३)

हिन्दू धर्म मानता है कि सभी जातियों को भगवत्कृपा एक-समान उपलब्ध है। हिन्दू धर्म यह नहीं मानता कि काफ़िर नाम की भी कोई जाति है जो एक विशेष प्रकार के धर्म की बाट जोह रही है। न ही यह धर्म उन अधम जातियों की बात करता है जिन्हें कोई अन्य जाति आकर कल्याण के मार्ग पर ले जाएगी। हिन्दू धर्म जातियों के बीच मिलने वाले विभेदों को स्वीकार करता है और जानता है कि भगवान अपना काम विविध जातियों में विविध प्रकार से

सम्पन्न करते हैं।

उदाहरणार्थ, भारत की जन-जातियाँ ले लीजिए। वे हजारों वर्ष से इस देश में थीं। हिन्दू धर्म ने उन्हें कभी नहीं छेड़ा, न उनका धर्मान्तरण करना चाहा। हिन्दू धर्म ने देख लिया कि भगवान अपना काम उन जातियों में एक अन्य मार्ग से कर रहे हैं। हिन्दू धर्म ने यदि उन जन-जातियों को कुछ दिया भी तो मौन रहकर उनसे कुछ ले भी लिया। ईसाइयत के आते ही यह शान्त वातावरण बदल गया। ईसाइयत जी-तोड़ प्रयास कर रही है कि उन जातियों में 'पाप भावना' प्रवेश पा जाए और फिर वे उस 'मुक्तिदाता' की खोज करें जो ईसा-इयत की हाट पर बिकता है। साथ ही ईसाइयत अपने अन्य आदर्श भी जन-जातियों पर लाद रही है। धनाढ्य और श्वेतांग मिशनरी अपना जाल फैलाने के लिए इस देश की दरिद्रता का उपयोग कर रहे हैं। वासना को आश्रय देना ईसाइयत के निकट महापाप माना गया है। किन्तु धर्मान्तरण के लिए मिशनरी लोग इस महापाप का भी सहारा लेते हैं। उदाहरणार्थ, पूर्वोत्तर अंचल में काम करने वाले बैपप्स्टि मिशनरी जन-जातियों के उन लोगों को पोली एस्टर की पतलूनें देते हैं जो ईसाई बनने के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि वे लोग अपने जाति-भाइयों के मतान्तरण में सहायता देते हैं तो उनको मोटर साइकिलें मिलती हैं। नियोगी रिपोर्ट के अनुसार मध्यप्रदेश में काम करने वाले मिशनरी जन-जातियों के लोगों को पाँच या दस डालर के छोटे-मोटे ऋण देते रहते हैं। मिशनरी यह बात भली-भाँति जानते हैं कि वे दरिद्र लोग ऋण नहीं लौटा पाएंगे। परन्तु यदि ऋणी लोग ईसाई बन जाते हैं तो मिशनरी मान लेते हैं कि ऋण वापिस आ गया। इस मायाजाल का एक ओर भी स्तर है। मिशनरी लोग स्कूल और हस्पताल चलाते हैं, और समाज-सेवा का आडम्बर रचते हैं। किन्तु हम जानते हैं कि समाज-सेवा आज किस प्रकार एक बहुत बड़ा व्यवसाय बन गया है। धूर्ततापूर्ण राजनीति भी। पाश्चात्य के देशों ने ईसाइयत को धत्ता बता दिया है। वे देश अपने लिए ईसाइयत को उपादेय नहीं मानते। किन्तु ईसाइयत का निर्यात वे अभी भी कर रहे हैं। पाश्चात्य के लोगों को समझना पड़ेगा कि वे क्या कुकृत्य कर रहे हैं।

भारत में जो हो रहा है वही अन्य देशों में भी हो रहा है। अमेरिका में एक समय वहां के लाल लोगों की अध्यात्म-प्रधान संस्कृति सर्वथा समृद्ध थी। अब वहां उस संस्कृति का लवलेश नहीं मिलता। अफ्रीका के नीग्रो लोगों पर ईसाइयत तथा इस्लाम, दो ओर से आक्रामक हैं। इस आक्रमण का रूप आर्थिक और राजनीतिक तो है ही। किन्तु एकमेव ईश्वर के ठेकेदारों द्वारा किया जाने वाला सांस्कृतिक आक्रमण और भी अधिक घातक है। यह सांस्कृतिक आक्रमण वहां के लोगों की

जड़ों पर प्रहार करता है और अध्यात्म की दृष्टि से उनको पंगु बना कर छोड़ देता है। नीग्रो लोगों के अपने धर्म ने उनको सिखलाया था कि वे सर्वत्र एक ही जीवात्मा का संचार देखें। अब ये नए धर्म उनको सिखला रहे हैं कि उनके चारों और केवल जड़ प्रकृति का ही प्रसार है, जीवात्मा का कहीं नहीं। इस प्रकार नीग्रो मनीषा का दीवाला निकाला जा रहा है।

हिन्दू धर्म तथा सामी धर्मों के बीच पाए जाने वाले ये मौलिक मतभेद उन-उन धर्मों की लोकसंग्रह-प्रणाली में भी प्रकट होते हैं। ईसाइयत और इस्लाम अपने जन्मकाल से ही "हम" और "वे" की रट लगाते रहे हैं। वे मानव जाति को दो वर्गों में विभक्त करते हैं—मोमिन और काफ़िर; कल्याणाकांक्षी, आस्तिक और कुकर्मरत नास्तिक; मुक्ति के पात्र और नरक के यात्री। ये दोनों धर्म मनुष्य मात्र के धर्म नहीं हैं। ये एक उम्म अथवा मिल्लत अथवा चर्च के धर्म हैं। इन धर्मों को न मानने वालों के प्रति इनके धर्मग्रन्थों में उत्कट घृणा का प्रचार मोटे-मोटे अक्षरों में मिलता है। इन धर्मों का इतिहास भी घृणा से ओतप्रोत है।

इस देश में हमें यह ज्ञात है कि इस्लाम के विस्तार में तलवार ने कितनी भूमिका निभाई है। किन्तु हमें यह भी जान लेना चाहिए कि ईसाइयत के विस्तार में भी तलवार से कुछ कम काम नहीं लिया गया। एक समय वह भी था जब ईसाई लोग गैर-ईसाइयों को मनुष्य ही नहीं मानते थे। 'वर्ल्ड बुक डिक्शनरी' (अंग्रेजी शब्द-कोष) में ईसाई शब्द का जो अर्थ किया गया है उसमें अब भी वही मनीषा विद्यमान है। वहां ईसाई का अर्थ है "मनुष्य, न कि पशु।" वैब्स्टर्ज थर्ड न्यू इन्टरनैशनल डिक्शनरी में तो यह अर्थ और भी अधिक स्पष्ट है। वहां ईसाई का अर्थ है "मानवप्राणी जो निम्न कोटि के पशु से भिन्न है।"

कुरान में कहा गया है कि "काफ़िर" लोग "निकृष्टतम कोटि के पशु हैं।" इस्लाम का क्रियाकलाप इस बात का साक्षी है कि यह वर्णन कोई शब्दालंकार नहीं। इस्लाम की विचार-धारा ने मानव जाति को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है: (१) मोमिन अर्थात् मुसलमान, (२) अहले-किताब अर्थात् अन्यान्य सामी धर्मों के अनुयायी, और (३) शेष सब मनुष्य। प्रथम वर्ग के लोग विशिष्ट लोग हैं। दूसरे वर्ग के लोगों को 'जिम्मी' कहा गया है अर्थात् वे लोग जिन को इस्लाम प्रश्रय दे सकता है। जिम्मी लोग यदि उन पर लादे गए अनाचार का विरोध न करें और दूसरे दर्जे के नागरिक बनना स्वीकार कर लें, तो प्रथम वर्ग के लोग उनको अपने प्रश्रय में रख सकते हैं। किन्तु तीसरे वर्ग के लोगों के लिए तो केवल दो ही रास्ते हैं—इस्लाम अथवा मौत। यह दूसरी बात है कि इस्लाम सब समय और सब स्थानों पर इस नीति को क्रियान्वित

नहीं कर पाया।

इस्लाम की यह परिणति अकस्मात् नहीं हुई। जहां धर्म-प्रेरणा का श्रोत केवल एक ही माना जाए, जहाँ ईश्वर का एकमात्र पुत्र अथवा अन्तिम पैगम्बर कहलाने का अधिकार केवल एक ही व्यक्ति को मिला हो, और जहाँ धर्मग्रन्थ का पद केवल एक ही पुस्तक को प्राप्त हो वहाँ एक विशेषाधिकार-सम्पन्न भाईचारे का उदय अनिवार्य है। एक विशेषाधिकार-सम्पन्त श्रुति की धारणा ही एक विशेषाधिकार-सम्पन्न धर्मसंस्था की जननी है। कठिनाई केवल यही है कि अपने-आपको अथवा अपने गुरु को एक-मात्र पैग़म्बर मानने वाले अनेक घ्यक्ति जन्म लेते रहते हैं। ऐसे लोगों को मिथ्या-मसीह अथवा झूठे पैग़म्बर कह कर धिक्कारना पड़ता है। ईसा ने कहा था कि "आगे चलकर बहुत से झूठे पैग़म्बर सिर उठाएँगे।" यह सच है कि झूठे पैग़म्बरों की कमी नहीं और उनसे सावधान भी रहना चाहिए। किन्तु ईसा के शिष्यों ने अपने गुरु के कथन का अर्थ यह लगा लिया कि उनके गुरु के सिवाय अन्य सब पैग़म्बर झूठे हैं। इस्लाम में तो मुहम्मद के उपरान्त किसी अन्य को पैग़म्बर मानना मृत्युदण्ड द्वारा वर्जित है। मुहम्मद के समय में ही कई अन्य लोगों ने पैग़म्बर होने का दावा किया था। मुहम्मद ने उन प्रतिस्पर्द्धियों के प्रति सहिष्णुभाव नहीं बरता था। और जिन लोगों ने मुहम्मद के पैग़म्बर होने पर संशय व्यक्त किया था उनको मुहम्मद ने कत्ल करवा दिया था। अशरफ का बेटा काब, मार्वान की बेटी अस्मा और सौ वर्ष का बूढा अबू अफ़ाक इसी-लिए मुहम्मद के भेजे हत्यारों द्वारा मारे गए थे कि उन लोगों ने मुहम्मद के प्रति अपने संशय को काव्यबद्ध कर दिया था।

दूसरी ओर, ज्ञान-प्रधान धर्मों की दृष्टि सार्वभौम रही है। उदाहरणार्थ, उपनिषदों का पाठ कीजिए अथवा स्टोइक मनीषी मारकस ऑरेलियस द्वारा लिखित मैडीटेशन्ज् पढ़िए। यहां आपको "हम" और "वे" का अभिधान नहीं मिलेगा। ये धर्म किसी वैशिष्ट्य का दावा नहीं करते। ये जिस सत्य की बात कहते हैं वह सार्वभौम सत्य है। वह सत्य उन सबके लिए सुलभ है जो शुद्ध भाव से उसे खोजते हैं और उसे पाने के लिए अपने आप को तैयार करते हैं। ये धर्म यह नहीं कहते कि आस्था का आश्रय लो। ये कहते हैं कि सत्य की खोज करो। किन्तु यदि आप खोज करना नहीं चाहते तो आपकी इच्छा। आप पर इन धर्मों की ओर से बलात्कार नहीं किया जाएगा, आपको धमकी नहीं दी जाएगी, आपको फुसलाया भी नहीं जाएगा।

एक विशिष्ट श्रुतिकी धारणा का आग्रह करने के कारण और फलस्वरूप एक विशेषाधिकार-सम्पन्न भाईचारे अथवा धर्मसंस्थान को

जन्म देने के कारण, ईसाइयत तथा इस्लाम कई प्रकार से पथभ्रष्ट हुए हैं। उन धर्मों का सदाचार संकुचित बन गया और उनके द्वारा गठित समाजव्यवस्था सत्ता-परक हो उठी। वे धर्म-संस्थान राजनीतिक प्रसार में जुट गए। इस बाह्यमुखी प्रसार में धर्मभावना की एक ऐसी पुट भी रहती है जो अपने अनुयाइयों को एक आवेश से भर देती है। किसी-किसी में यह धर्म भावना अध्यात्मोन्मुख भी हो जाती है। किन्तु इतिहास में इन धर्मों द्वारा गठित धर्मसंस्थानों में जो प्रवृत्ति प्रधान रही है वह है राजनीतिक सत्ता की लालसा। मुसलमानों के कलमे में आस्था-निवेदन कम है, युद्ध का नारा अधिक। 'अल्लाहो अकबर' जितनी बार मस्जिदों में सुना गया है उतनी ही बार युद्ध भूमि में भी उसका घोष हुआ है।

इन सामी धर्मों ने राजनीतिक सत्ता को ही अपने प्रसार का माध्यम बनाया है। इन धर्मों के प्रचारक पुरोहित होने के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ रहे हैं। वे राजसत्ता के कर्मचारियों का काम भी करते हैं। राजसत्ता के बाहर किसी अन्य अनुशासन की डोर में बंधे होने पर भी वे लोग राजसत्ता की व्यवस्था के ही अंग होते हैं। इन धर्मों ने मतान्ध राजव्यवस्था का रूप ले लिया। इन्होंने मुल्ला तथा पादरी की धाक सर्वसाधारण पर जमा दी। चर्च के वेतनभोगी कर्मचारी ऐसे कानूनों का पालन करवाने लगे जिन्हें वह दैवी मानते थे। जनता को सदाचारी बनाने का ठेका उन कर्मचारियों ने अपने ऊपर ले लिया और भगवदेच्छा का भेद खोलना भी उन्हीं का एकाधिकार बन गया। योरप में आज परम्परागत आस्था नगण्य रह गई है। किन्तु राजसत्ता तथा धर्मसंस्था का पारस्परिक गठबन्धन अभी भी बना हुआ है। इंग्लैंड में एंग्लीकन चर्च वहां के राष्ट्रीय धर्म की ठेकेदार है। उस चर्च के पादरी वहाँ की सरकार के वेतनभोगी कर्मचारी हैं। जर्मनी में धर्मसंस्थानों के लिए करों का संग्रह वहाँ की सरकार अन्यान्य करों के साथ करती है और तदुपरान्त धर्मसंस्थानों को उनका हिस्सा दे देती है।

हिन्दू धर्म में इस प्रकार की कोई बात कभी नहीं देखी गई। ब्राह्मण वर्ण का बहुत गौरव रहा है। किन्तु ब्राह्मण लोग पुरोहितों का काम करते रहे हैं, अथवा पण्डिताई। वे शिक्षा देते हैं, उपदेश देते हैं, जन्म, विवाह, मरण इत्यादि के समय वे लोग संस्कार भी सम्पन्न करवाते हैं। किन्तु हिन्दू धर्म के मर्म को जानने वाले और संज्ञा देने वाले लोग साधु-सन्यासी ही रहे हैं, अथवा वे गृहस्थ जिनको साक्षात्कार-सम्पन्न समझा गया है। हिन्दू धर्म में कभी किसी पोप को स्थान नहीं मिला, न ही किसी मंच से की गई प्रज्ञप्ति को। हिन्दू धर्म फतवे नही देता। न ही हिन्दू धर्म में किसी ऐसी सिद्धान्त-संहिता का स्थान है जिसका

संकलन सत्ताप्राप्त पुरोहित लोगों ने राजाओं और सामन्तों की छत्रछाया में एकत्र होकर किया हो ।

आस्था और अन्धविश्वास के आधिपत्य के कारण ईसाइयत और इस्लाम सत्तालोलुप और कट्टरपन्थी बन गए हैं। दूसरी ओर हिन्दू धर्म एक ऐसा धर्म है जिसमें बुद्धि, तत्त्वमीमांसा तथा मनोविज्ञान को महत्व मिला है । फलस्वरूप हिन्दू धर्म साधना-परक रहा है और विविध दृष्टियों को स्वीकार करता रहा है । हिन्दू एकेश्वरवादी भी हो सकता है, बहुदेववादी भी, निरीश्वरवादी भी और अद्वैतवादी भी । हिन्दू धर्म ऐसे सत्य का सम्पादन करता है जिसका किसी भी व्यक्ति द्वारा साक्षात्कार सम्भव है। यह दूसरी बात है कि साक्षात्कार की साधना कठिन है । इस प्रकार की साधना कठिन तो होगी ही । यह माना कि हिन्दू धर्म में शब्द-प्रमाण का प्रमुख स्थान है । शब्द-प्रमाण अर्थात् उन लोगों का साक्ष्य जो सत्य के साक्षी रहे हैं। किन्तु शब्द-प्रमाण का विषय भी अन्ततः अनुभूति का विषय है। प्रत्येक व्यक्ति इस अनुभूति का अधिकारी है। भगवान् बुद्ध ने इसी को 'ऐहिपस्सिक' कहा है। साधना द्वारा ही व्यक्ति सत्य को क्रमशः ग्रहण करता है, आत्मसात् करता है। साधना, अभ्यास और योग इस धर्म के मार्ग हैं । इसके विपरीत ईसाइयत अपने सिद्धान्त मनवाने का हठ करती है और सिद्धान्तों के मण्डन को ही बुद्धि की पराकाष्ठा समझती है। इस्लाम ने तो बुद्धि का प्रयोग करना सीखा ही नहीं। बुद्धि का प्रयोग करने वाले का सिर काटकर ही वह सारे विवाद समाप्त करता रहा है । इस्लाम के मत में प्रश्न पूछना व्यर्थ का प्रयास है । बलप्रयोग को ही इस्लाम ने अधिक उपयोगी माना है।

हमारे मत में सामी धर्मों की ईश्वर-विषयी धारणा एकांगी और असम्पूर्ण है । इसीलिए ये धर्म इस प्रकार की मतान्धता का परिचय देते हैं। ईश्वर के विषय में सामी धारणा गणित का अधिक प्रयोग करती है, अध्यात्म का बहुत कम । इस धारणा ने संख्या को ही सर्वोपरि मान लिया है, सत्य का मर्म टटोलना नहीं सीखा । अद्वैत, 'एकम् सत' इत्यादि ने हिन्दुओं को यह सिखलाया कि वे अहिन्दू लोगों के देवताओं में भी दैवी तत्व का दर्शन करें । सामी धर्मों ने अपने अनुयाइयों को यही सिखलाया है कि वे अन्य लोगों के देवताओं को शैतान समझें । इसलिए सैमिटिक धर्मों के अनुयायी सदा ही अन्य धर्मावलम्बियों के मन्दिरों तथा पावन स्थानों का ध्वंस करते रहे हैं।

हिन्दू जाति ने भी युद्ध किए हैं । किन्तु धर्म को लेकर उस जाति ने कभी कोई युद्ध नहीं किया । कोई हिन्दू राजा जब युद्ध में विजय प्राप्त करता था तो सर्वप्रथम वह पराजित लोगों के देवताओं की पूजा करता था । यह हिन्दू धर्म

का विधान भी था और आचरण भी। मनु ने कहा है: "विजेता को पराजित लोगों के देवताओं की यथायोग्य आराधना करनी चाहिए···उनके धर्म-प्राण ब्राह्मणों का मान करना चाहिए···उस जनपद की वैध्य परम्पराओं को प्रतिष्ठित करना चाहिए और पराजित राजा तथा उसके प्रमुख कर्मचारियों को प्रचुर भेंट इत्यादि देकर उनका सम्मान करना चाहिए।" सामी धर्मों की मनीषा इसके नितांत विपरीत है। इन धर्मों ने धर्म को लेकर युद्ध करने की परम्परा को जन्म दिया। ये धर्म अन्य लोगों के देवताओं तथा पुरोहितों के प्रति असहिष्णुता का परिचय देते रहे हैं। इन धर्मों के आचरण में नरसंहार, बीभत्स ध्वंसलीला तथा पराजित जनता का साम्राज्यवादी शोषण ही प्रधान रहा है।

अन्त में हम एक और बात कहना चाहते हैं। हम कह चुके हैं कि हिन्दू धर्म मानवमात्र को अपना आधार मानता है, किसी एक विशिष्ट भाई-चारे को नहीं। वस्तुतः हिन्दू धर्म की भावना और भी विशाल है। यह धर्म हमें प्राणी-मात्र के प्रति अनुकम्पा का आदेश देता है। यह धर्म हमें सिखलाता है कि सारा जीव-जगत्, सारी प्रकृति और समस्त पदार्थ अन्ततः एक ही हैं। इस दृष्टि में समष्टि की भावना का समावेश है। अधुना हम उत्तरोत्तर यह समझने लगे हैं कि जीवजगत की स्थिति इस समष्टि-भावना के बिना सम्भव नहीं।

हिन्दू धर्म यह नहीं मानता कि मनुष्य को धरा के पशु-पक्षियों तथा जल की मछलियों पर आधिपत्य जमाने के लिए जन्म दिया गया है। यह धारणा मनुष्य के अंध अहंभाव की द्योतक है। अन्यथा अन्य प्राणी भी मनुष्य के समान ही जीवनयापन के अधिकारी हैं। यह सत्य है कि मनुष्य को प्रकृति के वैभव का यथायोग्य उपभोग करने का अधिकार मिला है। परन्तु उस उपभोग में लूट-खसोट की भावना नहीं होनी चाहिए। साथ ही मनुष्य को यथासम्भव प्रकृति का पोषण भी करना चाहिए। दूसरे प्राणियों का शोषण करने अथवा उनके प्रति नृशंसता बरतने का अधिकार मनुष्य को नहीं मिला। दूसरे प्राणियों तथा प्रकृति का परिग्रहात्मक शोषण करने से एक प्रतिदण्ड की प्रक्रिया को जन्म मिलता है। पशुओं तथा पदार्थों को आत्मा से विहीन मानकर उनका संहार और शोषण करने वाला मनुष्य अपनी आत्मा का भी हनन कर बैठता है। पशुओं के प्रति बरती जाने वाली नृशंसता मनुष्यों के प्रति नृशंसता में परिणत हो जाती है। हिन्दू समाज में शाकाहार का विधान बहुत व्यापक है। इसका कारण है हिन्दू धर्म में विद्यमान अहिंसा, अपरिग्रह और अनुकम्पा का प्राधान्य। संसार की संस्कृति के लिए हिन्दू धर्म की यह अनुपम देन है।

हिन्दू धर्म सबसे पुरातन धर्म है। वह अभी भी प्राणवान् है। आधुनिक युग की जो सबसे अधिक मूल्यवान उपलब्धियाँ हैं, वे भी हिंदू धर्म में विद्यमान हैं।

बुद्धि का यप्रोग और सार्वभौम भावना। हिन्दू धर्म ऐतिहासिक धर्म नहीं है। उसका जन्म किसी विशेष युग में नहीं हुआ। न ही वह कोई चलता-फिरता फैशन है। हिन्दू धर्म में शाश्वत तत्त्व हैं। वह सनातन है। अपने अथाह चिन्तन में हिन्दू धर्म ने मनुष्य के कालातीत कल्याण को ही अपना विषय बनाया है। जागृत आत्मा का कर्म ही हिन्दू कर्म है। वह धर्म किसी ऐसे सत्य की दुहाई नहीं देता जो काल-सापेक्ष अथवा पुरुष-सापेक्ष हो। वह धर्म हमें कालचक्र का का बोध करवाने के साथ-साथ उस चक्र के परे सनातन की संज्ञा भी उपलब्ध करवाता है। वह हमें परमार्थ के साथ जोड़ता है। ब्रह्माण्ड, मानवजाति तथा हमारे अपने भूत और भविष्य जन्मों के साथ भी। वह अजस्र के बोध के साथ-साथ हमें अमृतत्व का बोध भी करवाता है। वह मनुष्य की प्रगाढ़तम नैतिक और आध्यात्मिक अभीप्साओं को तृप्त करता है। उसने विविध साधनापथों का आविष्कार किया है जिनके द्वारा मनुष्य एक अधिक सार्थक, अधिक ऐकात्म्य-पूर्ण और अधिक मार्मिक जीवन में उत्तीर्ण हो सकता है। उस धर्म की पकड़ मानवतावादी है और दृष्टि सार्वभौम। उसमें बुद्धि का पूर्ण समावेश है। उसका परीक्षण, प्रयोग तथा विचार द्वारा किया जा सकता है। वह अनेकान्त है, अनु-कम्पाशील और अहिंसात्मक है। उसमें वे सारे सत्य विद्यमान हैं जो मनुष्य अपने अन्तर में खोजता रहा है। वस्तुतः वह उस खोज का ही परिणाम है। सारभूत सत्य की खोज करने वाले जो साधक इस धर्म का सहारा लेते हैं, उनको अपार आत्मतृप्ति की अनुभूति अवश्य होती है।

OUR PUBLICATIONS IN ENGLISH

		Rs.
1.	Understanding Islam Through Hadis : Religious Faith or Fanaticism? *by Ram Swarup*	80.00 HB 30.00 PB
2.	Muslim Separatism : Causes and Consequences *by Sita Ram Goel*	12.00 HB 7.00 PB
3.	Story of Islamic Imperialism in India *by Sita Ram Goel*	7.00
4.	Defence of Hindu Society *by Sita Ram Goel*	5.00
5.	Christianity : An Imperialist Ideology *by Major T.R. Vedantham, Ram Swarup and Sita Ram Goel*	5.00
6.	Perversion of India's Political Parlance *by Sita Ram Goel*	5.00
7.	How I Became A Hindu *by Sita Ram Goel*	4.00
8.	History of Heroic Hindu Resistance to Muslim Invaders (636 A.D. to 1206 A.D.) *by Sita Ram Goel*	4.00
9.	Buddhism vis-a-vis Hinduism (revised edition) *by Ram Swarup*	4.00
10.	Report of the Christian Missionary Activities Enquiry (Niyogi) Committee (Abridged)	4.00
11.	Hindu-Sikh Relationship *by Ram Swarup*	3.00
12.	Hindu Society Under Siege *by Sita Ram Goel*	3.00
13.	Hinduism vis-a-vis Christianity and Islam *by Ram Swarup*	3.00
14.	The Emerging National Vision *by Sita Ram Goel*	2.50
15.	St. Francis Xavier : The Man and His Mission *by Sita Ram Goel*	2.00
16.	The Hindu View of Education *by Ram Swarup*	2.00
17.	The Bible : What It Says *by Colin Maine*	2.00

Postage included

Remit full price by M.O. or D. D.

Outstation cheques not accepted

A Path-Breaking Publication

UNDERSTANDING ISLAM THROUGH HADIS

Religious Faith or Fanaticism ?

by Ram Swarup

In the language of Muslim theologians, Islam is a "complete" and "completed" religion, dealing not merely with theological matters but with all aspects of the believer's life, and superseding all previously revealed religions, such as Judaism and Christianity. Islam has two primary sources : *Quran*, comprising the revelations vouchsafed to Prophet Muhammad by Allah, and the *Hadis*, an extensive body of authentic traditions focusing on Muhammad's personal life and practice and transmitted by people who actually knew him.

Both the *Quran* and the *Hadis* are regarded as works of revelation or divine inspiration : only the mode of expression differs The *Hadis* is the *Quran* in action, revelation made concrete in the life of the Prophet. In the early centuries of Islam, many thousands of *ahadis*, or traditions, were collected and sifted, and those considered reliable were written down, forming six collections (*sahis*) considered orthodox by Muslims even today. Ram Swarup quotes extensively from them, particularly from *Sahis Muslim*, one of the top "two authentics," now available in English translation. He also quotes from other traditional sources, including the *Quran* and the orthodox biographies of the Prophet (*siras*), in order to provide a unique glimpse of Islam's teachings and practices.

The new fundamentalism that is sweeping the Muslim world is little understood by the rest of the world. Prophetic Islam is based on an intolerant idea, and it has its own version of the "white-man's burden" of rooting out polytheism and unbelief. The "infidel" world will do well to understand this mind. This, Sri Swarup says, can best by done through studying the *Hadis* and by learning what kind of man Muhammad really was, for the *Hadis* literature "gives a living picture of Islam at its source and of Islam in the making,

providing an intimate view of the elements that constitute orthodox Islam in their pristine purity......the very elements of Islam that Muslims find most facinating," repeatedy, motivated by a compulsive atavism, appealing to them and reverting to them.

Thoroughly researched and documented, *Understanding Islam Through Hadis* is a valuable reference and source of scholarly insight for theologian and layperson alike.

Published in the U.S.A., 1983
Indian Reprint, 1984

Demy Octavo   Price Rs. 80.00 HB   Pages 287
„ 30.00 PB

आवेदन

हिन्दू समाज तथा संस्कृति आज संकटग्रस्त है। कई-एक दस्युदल भारतवर्ष की सनातन संस्कृति का उच्छेद करने के लिए कटिबद्ध हैं। भारतवर्ष में जिस समय पहिले मुसलमानों का और फिर अंग्रेजों का विदेशी शासन था उस समय इन दस्युदलों ने अपने पाँव इस देश में जमाये थे। भारतवर्ष स्वाधीन हो गया। किन्तु ये दस्युदल अब भी आक्रमण-परायण हैं। इन्होंने हिन्दू समाज और संस्कृति के विरुद्ध एक संयुक्त मोरचा बना रखा है।

भारत-भारती ने विचारात्मक दृष्टि से हिन्दू समाज तथा संस्कृति का बचाव करने का व्रत लिया है। यह काम एक प्रकाशन-माला के माध्यम से किया जा रहा है। अभी तक जो भी प्रकाशन हमारी ओर से निकले हैं उनका बहुत स्वागत हुआ है।

मानवबुद्धि सदा ही सत्य के प्रति आग्रहशील रही है। अतएव इस संघर्ष में सत्य ही हमारा एक मात्र अस्त्र है। एक ओर हिन्दू समाज तथा संस्कृति के सम्बन्ध में और दूसरी ओर दस्युदलों के सम्बन्ध में समूचे सत्य का उद्घाटन होना चाहिए।

हम प्रत्येक हिन्दू को आमन्त्रित करते हैं कि वह १) हमारे प्रकाशन अधिक से अधिक संख्या में खरीद कर जिज्ञासु जनों को पढ़ाए और २) हमारे सत्यशोधक-कोष में उदारहृदय से दान दे। हमारे लिए दान की कोई भी राशि न छोटी है, न बड़ी। चैक, बैंक ड्राफ्ट, पोस्टल आर्डर तथा मनीआर्डर, भारत-भारती, २/१८, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-११०००२ के पते पर भेजें।

भारत-भारती, २/१८, अन्सारी रोड़, नई दिल्ली-११०००२ से सीताराम गोयल द्वारा प्रकाशित एवं सुमन प्रिंटर्स एण्ड स्टेशनर्स १/६३४६-बी, वेस्ट रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२ द्वारा मुद्रित।